ORIGINAL RESEARCH PAPER

History

KEY WORDS:

महात्मा ज्योतिबा फुले के सामाजिक दर्शन का एक अध्ययन

अंकित

एम.ए. यूजीसी नेट, इतिहास विभाग

महात्मा ज्योतिबा फुले के प्रादुर्भाव के समय अर्थात 19वीं शताब्दी में भारतीय समाज, विशेषकर हिंदू समाज पूरी तरह धार्मिक अंधविश्वासों के जाल में जकड़ा हुआ था। हिंदू धर्म के संदर्भ में महान पाश्चात्य सामाजिक चिंतक मैक्स वेबर ने लिखा है 'हिंदू धर्म दरअसल जादू टोना, अंधविश्वास और अध्यात्मवाद की खिचड़ी बन कर रह गया था।'

इस समय समाज में अनेक कुरीतियों जैसे की मूर्ति पूजा, बहुदेव वाद, धार्मिक आडंबर, अंधविश्वास, सती प्रथा, बाल विवाह, कन्या वध, विधवा प्रथा, विदेश यात्रा का निषेध, ब्राह्मणों का प्रभुत्व एवं जन्म पर आधारित जातिभेद का बोलबाला था। सबसे ज्यादा दुर्भाग्यपूर्ण बात थी छुआछूत जिसके चलते अस्पृश्य को आदमी तक का दर्जा भी हासिल नहीं था। इस समय हिंदू समाज व्यवस्था काफी हद तक जड़ता पूर्ण हो चुकी थी।

इसी सामाजिक जड़ता तथा राजनीतिक हालातों के चलते ही 18वीं शताब्दी के मध्य में भारत में ब्रिटिश औपनिवेशिक राज्य की स्थापना हो गई थी। औपनिवेशिक भारत में सामाजिक जीवन से संबंधित शायद ही कोई ऐसी बड़ी समस्या होगी जिसकी सुधार के लिए ज्योतिराव फुले ने अपने सामाजिक दर्शन में विमर्श ना किया हो। उन्होंने अपने सामाजिक दर्शन में सामाजिक सुधार के प्रश्न पर व्यापक विमर्श किया। वह एक आधुनिक बुद्धिवादी चिंतक थे। उनका इस बात पर विश्वास नहीं था कि धर्म ग्रंथों का निर्माण ईश्वर ने किया है। सामाजिक एवं लैंगिक असमानता के धार्मिक आधार को भी ईश्वर का कार्य नहीं मानते थे। उनका विचार था कि सभी मानव समूह एवं नारी और पुरुष दोनों ही समान है।

इसी संदर्भ में भी अपनी प्रख्यात रचना 'गुलामगिरी' में समाज से कुछ महत्वपूर्ण प्रश्न पूछते हैं:

(क) ''मनुष्य–मनुष्य में भेद क्यों ?
(ख) स्त्री और पुरुष में भेद क्यों?
(ग) ईश्वर और भक्त के बीच दलाल क्यों ?''

उन्होंने अपने सामाजिक दर्शन के अंतर्गत यह स्थापित किया कि राजनीतिक दासता से सामाजिक दासता कहीं अधिक खराब होती है। उन्होंने अपनी रचनाओं में जिस 'गुलामगिरी' पर प्रहार किया वह हिंदू समाज में विद्यमान धार्मिक तथा सामाजिक गुलामी थी जिसे ब्राह्मणों आदि द्वारा स्त्रियों एवं शुद्रो के ऊपर धर्म की आड़ में सदियों से थोपा गया था।

उन्होने अपनी पुस्तक गुलामगिरी में लिखा कि मेरा उद्देश्य दबे कुचले बहनों–भाइयों को केवल यह बताना नहीं है कि वह ब्राह्मणों द्वारा किस तरह ठगे गए हैं, बल्कि यह बताना भी है कि किस तरह उसी धर्म की आड़ में वह गुलाम बना दिए गए हैं, जिस धर्म का वे स्वयं एक भाग हैं। इसी कारण उनकी यह पुस्तक भारतीय समाज के दबे–कुचले वर्गों की ''मुक्ति का घोषणा पत्र'' कहलाती है।

ज्योतिबा फुले ने अपने सामाजिक दर्शन में विद्यमान सामाजिक अन्याय की जटिल समस्या के लिए मुख्यतः ब्राह्मणवादी धर्म को उत्तरदायी माना। उन्होंने इस तथ्य को विशेष तौर पर रेखांकित किया कि भारतीय सामाजिक जीवन पर सदियों से धर्म गुरु और ब्राह्मणों का अविच्छिन्न अधिकार कायम था। इसी तथ्य के मद्देनजर फूले का विश्वास था कि ऐसी तमाम ब्राह्मणवादी मान्यताओं, रूढ़ियों व नियमों का उन्मूलन किए जाने तथा हिन्दू समाज व्यवस्था में आमूलचूल बदलाव लाए जाने के बगैर भारत में सामाजिक न्याय की स्थापना करना असंभव है।

उन्होंने भारत में विद्यमान सामाजिक अन्याय की समस्या का विश्लेषण करते हुए बताया कि हिंदू समाज में ब्राह्मणवादी विचारधारा के हावी हो जाने के कारण ही वर्णभेद, लिंगभेद एवं ऊंच–नीच जैसी चीजें मान्य होने लगी थी। फुले ने ध्यान दिलाते हुए लिखा कि यदि दुनिया के तमाम देशों के इतिहास का तुलनात्मक अध्ययन किया जाए तो ज्ञात होगा कि केवल हिंदुस्तान में ही यह देखने को मिलता है कि 'ब्राह्मण' नाम की किसी जाति ने अपने आप को बड़े अहंकार से सबसे 'उच्चतम' एवं 'श्रेष्ठतम' घोषित किया है। वह लोग हमेशा सामाजिक कुप्रथाओं को शास्त्रोंचित्त बताकर उन्हें धार्मिक आधार प्रदान करते रहे थे। ऐसे में 'ब्राह्मणवाद' हिंदू धर्म एवं समाज की लगभग सारी समस्याओं के लिए जिम्मेदार था।

वर्ण व्यवस्था की उत्पत्ति किस तरह निहित स्वार्थों को बचाए एवं बनाए रखने के लिए की गई इस विषय में और अधिक रोशनी डालते हुए खुले लिखते हैं: "उन (आर्यों) में से कुछ धूर्त और स्वार्थी लोगों ने अपनी धूर्तता और अपने ज्ञान के बल पर, जो पहले ही अज्ञानी थे और अपनी मर्जी से खुद ही गुलाम बन गए थे को, कुछ दिखावटी नियमों से... जकड़ करके रख दिया। .... उन्होंने हर वर्ण के कर्म तय कर दिए और निम्न वर्ण के मनुष्य के ऊंचे वर्ण में जाने पर रोक लगा दी, फिर चाहे उसका कर्म कितना भी उत्तम दर्जे का क्यों ना हो।"

भारत में दलित समस्या की उत्पत्ति पर अपनी 'अछूतों की कैफियत' नामक रचना में नस्लीय सिद्धांत के आधार पर विचार व्यक्त करते हुए फुले अस्पृश्यों की ओर से कहते हैं: ''उन्होंने (आर्यों) ने हमें पशु से भी गया गुजरा बना दिया। उनका उद्देश्य यही हो सकता था जब उन्होंने इस देश पर आक्रमण किया और यहां अपना उपनिवेश कायम किया, उस समय हम लोग उनसे अपने देश की खातिर और अपनी मानसिक तथा शारीरिक स्वतंत्रता के लिए लड़ते रहे, उनको बेचैन करते रहे। आज हमारे साथ उनके दुर्व्यवहार का उद्देश्य (इसी बात का) बदला लेना हो सकता है।''

उन्होंने अस्पृश्यों की ओर से ब्रिटिश सरकार से मांग की कि वह उनके लिए पृथक स्कूलों, सरकारी नौकरियों तथा रोजगार के साधनों का प्रबंध करें। साथ ही अंग्रेजी प्रशासन तंत्र के ऊपर से ब्राह्मणों एवं उच्च जातियों का नियंत्रण समाप्त कर निम्न जातियों तथा अल्पसंख्यको का प्रतिनिधित्व बढ़ाया जाना चाहिए। जहां तक पर स्त्रियों का संबंध है महात्मा फुले ने उनको पुरुषों के समकक्ष पूर्णतः समान दर्जा दिलाने पर बल दिया। उन्होंने नारी के लिए प्रयुक्त 'अबला' शब्द का एक अलग ही अर्थ लोगों को बताया। उनके अनुसार 'अबला' का अर्थ कमजोर नहीं बल्कि 'बलारहित' अर्थात 'विपत्तिरहित' है। वे शास्त्रों में नारियों के सम्मान में लिखी गई पंक्ति 'यत्र नार्यस्तु पूज्यंते रमंते तत्र देवता' में विश्वास रखते थे। महात्मा फुले का हिंदू धर्म के श्रेष्ठ मूल्यों से कोई विरोध नहीं था। परंतु वे विषमता मुल्क मूल्यों के विरुद्ध दृढ़ता से खड़े थे। वे इन मूल्यों एवं इन पर आधारित परंपराओं प्रथाओं को जड़ समेत उखाड़ फेंक देना चाहते थे ताकि हिंदू धर्म में सच्चे सामाजिक न्याय की स्थापना हो सके। इसी कारण उन्होंने तमाम महिला विरोधी कुरीतियों अर्थात सती प्रथा, बालिका हत्या, बाल विवाह, वैधव्य प्रथा, बहु विवाह, बेमेल विवाह, कुलीन प्रथा, देवदासी प्रथा इत्यादि के विरुद्ध बातें कहीं तथा अपने भाषणों, पर्चों, लेखों, पुस्तकों आदि के जरिए ऐसी तमाम सामाजिक बुराइयों के विरुद्ध लगातार प्रचार किया।

महात्मा फुले ने अपने सामाजिक दर्शन में जन शिक्षा विशेष रुप से दबे कुचले वर्गो एवं स्त्रियों में शिक्षा के प्रसार का जोरदार समर्थन किया। उन्होंने इस बात को समझा कि निम्न वर्गों एवं महिलाओं की दयनीय दशा का सबसे बड़ा कारण उनका अशिक्षित होना ही था। उन्होंने स्वयं प्रत्यक्ष रूप से पहल करते हुए इस कार्य क्षेत्र में प्रवेश कर जनक्षोभ का सामना किया।

लेकिन भारतीय समाज में तत्कालीन युग में जन शिक्षा का प्रसार इतनी आसानी से नहीं हो सकता था। हिन्दू समाज में अध्यापन का कार्य ब्राह्मणों के हाथ में था और उनमें से ज्यादातर किसी भी कीमत पर शूद्रों और स्त्रियों को शिक्षित करने के पक्ष में नहीं थे। फूले ने पाया कि लोग शुद्रों–अतिशुद्रों की बौद्धिक क्षमताओं को जान बूझकर नकारते थे और अपने सजातीय एवं अन्य उच्च जातिय/वर्गीय अधिकारियों जो औपनिवेशिक प्रशासन तंत्र में काबिज हो गए थे, को भी इन समूहों को आगे न बढ़ाने की हिदायत देते थे।

निम्न वर्ग एवं स्त्रियों में आधुनिक शिक्षा के प्रसार में अंग्रेजों के सीमित प्रयासों को भी महात्मा फुले एक वरदान की तरह मानते थे साथ ही साथ वे अंग्रेजी शासकों के समक्ष यह मांग उठाते रहे कि वह स्त्रियों व निचले तबकों के लोगों को शिक्षा की सुविधाएं पर्याप्त मात्रा में प्रदान करें। हर गांव में पाठशाला खोलें, महिलाओं का उत्पीड़न रोके, साहूकारों का जुल्म समाप्त करें तथा सरकारी सेवाओं में 'बहुजन समाज' की जातियों को उनकी संख्या के अनुपात में हिस्सा दें।

महात्मा ज्योति राव फुले के सामाजिक दर्शन के रचनात्मक आयामों पर गौर करने से हमें ज्ञात होता है कि वह 'वैकल्पिक समाज व्यवस्था' का एक पूरा मॉडल पेश करते हैं। महात्मा फुले ने अपने सामाजिक दर्शन में एक आदर्श सत्यधर्म, स्वतंत्रता, समता व बंधुत्व पर आधारित न्यायपूर्ण समाज की परिकल्पना की और अपनी इन अवधारणाओं को उन्होंने व्यवहारिक रूप देने का भी प्रयास किया। उन्होंने अपने सामाजिक सुधार कार्यक्रम के अंतर्गत 'अन्यायपूर्ण ब्राह्मणवादी समाज व्यवस्था' के विरुद्ध शिद्दत से आवाज उठाई और उसमें आमूलचूल बदलाव और क्रांतिकारी सुधार लाने की बात कही। संक्षेप में तत्कालीन पुरुष–प्रधान ब्राह्मणवादी समाज में ज्योतिबा फुले शूद्रों, अतिशूद्रों व स्त्रियों के लिए मुक्तिदाता, दार्शनिक व सुधारक बनकर आए। वह आधुनिक भारत के एक महान 'चिंतक' थे।

सन्दर्भ सूची

1 बिपिन चन्द्र, भारत का स्वतन्त्रता संघर्ष, हिन्दी माध्यम कार्यान्वय निदेशालय, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली, 1997 पृ०54
2 धनन्जय कीर, डॉ. बी. आर. अम्बेडकरः लाईफ एण्ड मिशन, पॉपुलर प्रकाशन, तृतीय संस्करण, 1997,नई दिल्ली, पृ०1–2
3 जियालाल आर्य, ज्योतिपुंज महात्मा फुले, प्रकाशन संस्थान, नई दिल्ली, 2006,पृ० 180–181
4 वेद कुमार वेदालंकार (अनुवादक), महात्मा जोतिबा फुले, महाराष्ट्र शासन, मुम्बई, 1996,पृ० 5
5 धनन्जय कीर, महात्मा ज्योतिराव फुलेः दी फादर ऑफ इण्डियन सोशल रिवोल्यूशन, पॉपुलर प्रकाशन, बम्बई, 1964,पृ०113
6 वही पृ० 127
7 हरि नरके, महात्मा फुलेः साहित्य और विचार, महात्मा फुले चरित्र साधने समिति, महाराष्ट्र, 1993, पृ० 138
8 वही पृ० 72
9 एल. जी. मेश्राम, महात्मा ज्योतिबा फुले रचनावली, खण्ड–2, राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली, 2009, पृ० 271
10 वही, पृ० 292
11 वही, पृ० 304
12 मुरलीधर जगताप, सामाजिक क्रांति के अमृत महात्मा ज्योतिबा फुले, महामित्र प्रकाशन, महाराष्ट्र, 1989, पृ० 25
13 जियालाल आर्य, ज्योतिपुंज महात्मा फुले, प्रकाशन संस्थान , नई दिल्ली , 2006,पृ० 180
14 अर्चना मलिक गौरे, ज्योतिबा फुले, सूर्योदय बुक्स, नई दिल्ली, 2013,पृ० 94
15 एल ० जी० मेश्राम 'विमलकीर्ति', महात्मा ज्योतिबा फुले रचनावली खंड–2, राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली, 2009, पृ० 166.
16 रोजालिंड ओ हैंनलोन, कास्ट, कनफ्लिक्ट् एंड आइडियोलोजी, ओरियंट ब्लैकस्वान, रानीखेत, 2010, पृ० 123